

## Chapter उन्नीस

### जम्बूद्वीप का वर्णन

इस अध्याय में भारतवर्ष के यशोगान के साथ ही किम्पुरुष वर्ष नामक भूखण्ड में भगवान् रामचन्द्र की आराधना का वर्णन है। किम्पुरुष वर्ष के निवासी भाग्यशाली हैं, क्योंकि वे भगवान् रामचन्द्र की आराधना उनके आज्ञाकारी सेवक हनुमान सहित करते हैं। भगवान् रामचन्द्र एक ऐसे अवतार का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो अपने भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के वध करने के उद्देश्य से अवतरित होते हैं—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* भगवान् रामचन्द्र परमेश्वर के अवतार के वास्तविक उद्देश्य को प्रस्तुत करते हैं और भक्तजन उनकी प्रेमपूर्वक दिव्य सेवा करने का सुयोग प्राप्त करते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह तथाकथित सुख, ऐश्वर्य तथा शिक्षा का परित्याग करके पूर्णतः भगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण कर दे, क्योंकि ये सब भगवान् को प्रसन्न करने के लिए तनिक भी सहायक नहीं होते। भगवान् तो केवल आत्मसमर्पण की क्रिया से प्रसन्न होते हैं।

जब देवर्षि नारद सार्वणि मनु को उपदेश देने के लिए अवतरित हुए तो उन्होंने भारतवर्ष के ऐश्वर्य का वर्णन किया। सार्वणि मनु तथा भारतवर्ष के निवासी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति में संलग्न रहते हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार के मूलरूप हैं और आत्मज्ञानी जनों द्वारा सदैव वंदित हैं। भारतवर्ष में भी अन्य भूखण्डों की भाँति अनेक नदियाँ तथा पर्वत हैं, किन्तु भारतवर्ष का विशेष महत्त्व इसलिए है, क्योंकि यहाँ पर वेदसम्मत वर्णाश्रम-धर्म प्रचलित है जो समाज को चार वर्णों तथा चार आश्रमों में वर्गीकृत करता है। यही नहीं, नारदमुनि के अनुसार यदि वर्णाश्रम धर्म के पालन में कोई क्षणिक बाधा भी पहुँचती है, तो तुरन्त ही उसको पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। वर्णाश्रम धर्म में दृढ़ रहने के कारण क्रम से परम पद की प्राप्ति और भौतिक बन्धन से छुटकारा मिलता है। वर्णाश्रम धर्म के नियमों के पालन से भक्तों की संगति का सुअवसर मिलता है, जिससे श्रीभगवान् के प्रति सेवाभाव की सुप्त प्रवृत्ति जागृत होती है और पापमय जीवन से छुटकारा मिल जाता है। तब मनुष्य को भगवान् वासुदेव की विशुद्ध भक्ति करने का अवसर प्राप्त होता है। भारतवासियों को ऐसा अवसर मिल सकने के कारण स्वर्ग में भी उनकी प्रशंसा की जाती है। यहाँ तक कि इस ब्रह्मांड के सर्वोच्च लोक, ब्रह्मलोक में भी भारतवर्ष के स्थान की चर्चा अत्यन्त रुचिपूर्वक की जाती है।

इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में तथा विभिन्न योनियों में समस्त बद्धजीवों का विकास हो रहा है। इस प्रकार कोई भी जीव ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है, किन्तु उसे पुनः पृथ्वी पर उतरना होता है जैसाकि *श्रीमद्भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है ( *आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन* )। यदि भारतवर्ष के वासी वर्णाश्रम धर्म का दृढ़ता से पालन करें और अपनी सुसुप्त कृष्णभावना को विकसित होने दें तो मृत्यु के पश्चात् उन्हें इस भौतिक जगत में लौटने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जहाँ सिद्ध आत्माओं द्वारा श्रीभगवान् की चर्चा सुनने को नहीं होती, चाहे व ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, जीवात्मा के लिए अनुकूल स्थान नहीं है। यदि किसी ने भारतवर्ष में मनुष्य का जन्म लेकर आध्यात्मिक उन्नति का लाभ नहीं उठाया तो सचमुच ही उसकी स्थिति शोचनीय है। यदि भारतवर्ष की भूमि में कोई “सर्वकाम” भक्त है अर्थात् वह किसी भौतिक कामना की पूर्ति करना चाहता है, तो वह भी भक्तों की संगति करने से समस्त कामनाओं से मुक्त होकर अंत में शुद्ध भक्त बन जाता है और बिना किसी कठिनाई के भगवान् के धाम वापस पहुँच जाता है।

इस अध्याय के अन्त में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से जम्बूद्वीप के अन्तर्गत आठ उपद्वीपों का वर्णन किया है।

श्रीशुक उवाच

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; किम्पुरुषे वर्षे—किम्पुरुष नामक भूखण्ड में; भगवन्तम्—श्रीभगवान्; आदि-पुरुषम्—समस्त कारणों के मूल कारण; लक्ष्मण-अग्र-जम्—लक्ष्मण के अग्रज ( बड़े भ्राता ); सीता-अभिरामम्—सीता माता को अत्यन्त प्रिय अथवा सीतादेवी के पति; रामम्—भगवान् रामचन्द्र को; तत्-चरण-सन्निकर्ष-अभिरतः—भगवान् राम के चरणकमलों की सेवा में सदैव तत्पर; परम-भागवतः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विख्यात महान् भक्त; हनुमान्—श्री हनुमानजी; सह—सहित; किम्पुरुषैः—किम्पुरुषवर्ष के निवासियों द्वारा; अविरत—निरन्तर; भक्तिः—भक्ति करने वाला; उपास्ते—पूजा करता है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्, किम्पुरुषवर्ष में महान् भक्त हनुमान वहाँ के निवासियों सहित लक्ष्मण के अग्रज तथा सीतादेवी के पति भगवान् रामचन्द्र की सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं।

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥

शब्दार्थ

आर्ष्टि-षेणेन—किम्पुरुष वर्ष का प्रधान पुरुष आर्ष्टिषेण; सह—साथ; गन्धर्वैः—गन्धर्वों के द्वारा; अनुगीयमानाम्—जपे जाकर; परम-कल्याणीम्—परम कल्याण प्रदान करने वाली; भर्तृ-भगवत्-कथाम्—अपने पति ( श्रीभगवान् ) का यशोगान; समुपशृणोति—अत्यन्त मनोयोग से श्रवण करता है; स्वयम् च—स्वयं भी; इदम्—यह; गायति—गायन करता है।

गन्धर्वों का समूह सदा ही भगवान् रामचन्द्र के यशों का गान करता है। ऐसा गायन अत्यन्त मंगलकारी होता है। हनुमानजी तथा किम्पुरुषवर्ष के प्रधान पुरुष आर्ष्टिषेण अत्यन्त मनोयोग से इस यशोगान का निरन्तर श्रवण करते हैं। हनुमानजी निम्न मंत्रों का जप करते हैं।

तात्पर्य : पुराणों में भगवान् रामचन्द्र के सम्बन्ध में दो मत हैं। लघुभागवतामृत (५.३४-३६) में मनु-अवतार वर्णन में इसकी पुष्टि हुई है।

वासुदेवादिरूपाणामवताराः प्रकीर्तिताः ।

विष्णु-धर्मोत्तरे रामलक्ष्मणाद्याः क्रमादमी ॥

पाद्मे तु रामो भगवान् नारायण इतीरितः ।

शेषश्चक्रं च शंखश्च क्रमात् स्युर्लक्ष्मणादयः ॥

मध्यदेशस्थितायोध्यापुरेऽस्य वसतिः स्मृता ।

महावैकुण्ठलोके च राघवेन्द्रस्य कीर्तिता ॥

विष्णु-धर्मोत्तर में वर्णित है कि रामचन्द्रजी तथा उनके भ्राता लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के अवतार हैं। किन्तु पद्म पुराण का कथन है कि भगवान् रामचन्द्र नारायण के अवतार हैं और अन्य तीनों भाई शेष, चक्र तथा शंख के अवतार हैं। अतः श्रील बलदेव विद्याभूषण इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तदिदं कल्पभेदेनैव सम्भाव्यम्। कहने का तात्पर्य यह कि ये मत विरोधाभासी नहीं हैं। किसी युग में अपने भाइयों सहित भगवान् रामचन्द्र वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में अवतरित होते हैं, तो अन्य युग में वे नारायण, शेष, चक्र तथा शंख का अवतार धारण करते रहते हैं। भगवान् रामचन्द्र का निवास स्थान इसी धरा पर स्थित अयोध्या में है। उत्तर प्रदेश के उत्तर में जिला फैजाबाद के अन्तर्गत अयोध्या नगर आज भी स्थित है।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः  
साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

ओम्—हे भगवान्; नमः—नमस्कार है; भगवते—श्रीभगवान् को; उत्तम-श्लोकाय—जिनकी अर्चना सदैव उत्तम श्लोकों से की जाती है; नमः—मेरा नमस्कार; आर्य-लक्षण-शील-व्रताय—जिसमें उत्तम पुरुषों के समस्त गुण विद्यमान हैं; नमः—मेरा नमस्कार; उपशिक्षित-आत्मने—आपको जिनकी इन्द्रियाँ वश में हैं; उपासित-लोकाय—जो समस्त श्रेणियों के लोगों द्वारा सदैव पूजित हैं; नमः—मेरा नमस्कार; साधु-वाद-निकषणाय—श्रीभगवान् को जो गुणों के परखने की कसौटी तुल्य हैं; नमः—मेरा नमस्कार; ब्रह्मण्य-देवाय—जो सुयोग्य ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं; महा-पुरुषाय—श्रीभगवान् को जो इस भौतिक सृष्टि का कारण होने की वजह से पुरुष-सूक्त द्वारा पूजित हैं; महा-राजाय—सभी राजाओं में श्रेष्ठ महाराज को; नमः—मेरा नमस्कार; इति—इस प्रकार।

हे प्रभो, मैं ॐ कार बीजमंत्र के जप से आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मैं उन श्रीभगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो उत्तम पुरुषों में सर्वाधिक हैं। आप आर्यजनों के समस्त उत्तम गुणों के भंडार हैं। आपके गुण तथा आचरण सदैव एकसमान रहने वाला है और आप अपनी इन्द्रियों तथा मन को सदैव अपने वश में रखने वाले हैं। सामान्य व्यक्ति की भाँति आप आदर्श चरित्र प्रस्तुत करके अन्यो को आचरण करना सिखाते हैं। कसौटी केवल स्वर्ण के गुण की परीक्षा करने में समर्थ है, किन्तु आप ऐसे स्पर्श-मणि हैं, जिससे समस्त उत्तम गुणों की परीक्षा

हो जाती है। आप भक्तों में अग्रणी ब्राह्मणों के द्वारा उपासित हैं। हे परम पुरुष, आप महाराजा हैं, अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं  
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।  
प्रत्यक्प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं  
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—उस परम सत्य को; विशुद्ध—विशुद्ध, भौतिक प्रकृति के स्पर्श से दूर; अनुभव—अनुभव; मात्रम्—सच्चिदानन्द दिव्य देह; एकम्—एकमात्र; स्व-तेजसा—अपने तेज से; ध्वस्त—ध्वस्त; गुण-व्यवस्थम्—गुणों का प्रभाव; प्रत्यक्—दिव्य, भौतिक नेत्रों से अदृष्ट; प्रशान्तम्—धीर, विक्षोभरहित; सुधिया—कृष्णभावना से, जो भौतिक कामनाओं, कर्मों तथा कल्पनाओं से अप्रभावित है; उपलम्भनम्—उपलब्ध किया जा सकने वाला; हि—निस्सन्देह; अनाम-रूपम्—नाम तथा रूप रहित; निरहम्—अहंकाररहित; प्रपद्ये—मुझे नमस्कार करने दें।

भगवान् को, जिनका विशुद्ध रूप ( सच्चिदानन्दविग्रह ) भौतिक गुणों के द्वारा दूषित नहीं है, विशुद्ध चेतना के द्वारा ही देखा जा सकता है। वेदान्त में उसे अद्वितीय कहा गया है। अपने तेजवश वह भौतिक प्रकृति के कल्मष से अछूता है और भौतिक दृष्टि से पर है। अप्रभावित है, अतः वह दिव्य है। न तो वह कोई कर्म करता है, न उसका कोई भौतिक रूप अथवा नाम है। केवल श्रीकृष्णभावना में ही भगवान् के दिव्य रूप के दर्शन किये जा सकते हैं। हमें चाहिए कि हम भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों में दृढ़तापूर्वक स्थित होकर उनको सादर नमन करें।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूपों में प्रकट होते हैं, जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) में कहा गया है—

रामादि मूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्  
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।  
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो  
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द की आराधना करता हूँ जो राम, नृसिंह जैसे अवतारों तथा उप-अवतारों के रूप में सदैव विराजमान हैं, किन्तु जो मूल रूप में भगवान् श्रीकृष्ण हैं और स्वयं भी अवतरित होते हैं।” कृष्ण विष्णुतत्त्व हैं, जिन्होंने अपने को विष्णु के नाना रूपों में विस्तारित किया है

जिनमें से भगवान् रामचन्द्र एक हैं। यह ज्ञातव्य है कि विष्णुतत्त्व को पक्षिराज गरुड़ अपने ऊपर रहन करते हैं और उनके चारों हाथों में भिन्न-भिन्न आयुध रहते हैं। अतः हमें संशय हो सकता है कि क्या रामचन्द्रजी भी उसी कोटि में आते हैं, क्योंकि उनको गरुड़ ने नहीं, वरन् हनुमानजी ने धारण किया था और उनके न तो चार भुजाएँ थीं, न ही उन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किया था। अतः इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण में अन्तर नहीं है ( *रामादिमूर्तिषु कला* )। यद्यपि श्रीकृष्ण मूल श्रीभगवान् हैं, किन्तु रामचन्द्रजी उनसे भिन्न नहीं हैं। भौतिक गुणों से अप्रभावित रहने के कारण भगवान् रामचन्द्र जी “प्रशान्त” हैं।

जब तक श्रीभगवान् के प्रति अगाध प्रेम नहीं होता, तब तक भगवान् रामचन्द्र की दिव्यता का महत्त्व समझ में नहीं आता। उन्हें भौतिक चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। चूँकि रावण जैसे असुरों के दिव्य दृष्टि नहीं होती, अतः वे भगवान् रामचन्द्र को सामान्य क्षत्रिय राजा मानते हैं। इसलिए रावण ने उनकी नित्य अर्धांगिनी सीतादेवी का अपहरण करना चाहा। किन्तु रावण सीतादेवी को उनके वास्तविक रूप में नहीं ले जा सका। ज्योंही रावण ने उनका स्पर्श किया, उन्होंने भौतिक रूप तो उसे समर्पित कर दिया, किन्तु अपने मूल रूप को बनाये रखा जो उसकी बुद्धि के परे था। इसलिए इस श्लोक में आगत *प्रत्यक् प्रशान्तं* यह सूचित करता है कि भगवान् रामचन्द्र तथा उनकी तेजस्वरूपा अर्धांगिनी सीतादेवी भौतिक शक्ति के प्रभाव से अपने को विलग रखते हैं।

उपनिषदों में कहा गया है— *यं एवैष वृणुते तेन लभ्यः।* परमात्मा का दर्शन उन्हीं को होता है जो उनकी भक्ति से ओतप्रोत हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में कहा गया है—

*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन*

*सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।*

*यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं*

*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥*

“मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन (पूजा) करता हूँ जो उन भक्तों द्वारा सदैव देखे जाते हैं जिनकी आँखों में प्रेम रूपी अंजन लगा होता है। वे भक्त के हृदय के भीतर अपने नित्य श्यामसुन्दर रूप में देखे जाते हैं।” इसी प्रकार *छान्दोग्य उपनिषद्* में कहा गया है— *एतास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेन।*

यहाँ *अनेन* शब्द से आत्मा एवं परमात्मा का अन्तर बताया गया है। *तिस्रो देवता* से यह सूचित होता है कि जीव-देह तीन भौतिक तत्त्वों—अग्नि, पृथ्वी तथा जल—से बनी हुई है। यद्यपि परमात्मा जीवात्मा के हृदय में प्रवेश करता है, जो भौतिक शरीर कहलाता है किन्तु जीवात्मा की देह से कोई सरोकार नहीं रहता। इसलिए परमात्मा को *अनाम रूपं निरहम्* कहा गया है। परमात्मा की कोई भौतिक पहचान नहीं है, किन्तु जीवात्मा की होती है। जीवात्मा अपना परिचय भारतीय, अमरीकी या जर्मन कह कर दे सकता है, किन्तु परमात्मा का ऐसा कोई भौतिक नाम नहीं होता। जीवात्मा अपने नाम से भिन्न होता है, किन्तु परमात्मा ऐसा नहीं है। उसका नाम और वह स्वयं एक हैं। *निरहं* का यही तात्पर्य है। इसको तोड़ मरोड़ कर यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता है कि परमात्मा अंहकार रहित या स्वरूपविहीन हैं। उनका परम दिव्य स्वरूप है। श्रील जीव गोस्वामी ने यही व्याख्या दी है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक दूसरा ही विवेचन किया है, जिसमें *निरहं* का अर्थ *निर्निश्चयेन अहं* है। *निरहं* का यह अर्थ नहीं कि भगवान् के कोई स्वरूप नहीं। वरन् *अहं* शब्द पर *बल* होने से यह सिद्ध होता है कि भगवान् का अपना स्वरूप है क्योंकि *निर्* का अर्थ केवल *नकारात्मक* न होकर पुष्टि करने वाला भी होता है।

मर्त्यावतारस्त्वह मर्त्यशिक्षणं

रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।

कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः

सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मर्त्य—मनुष्य; अवतारः—जिसका अवतार; तु—तो भी; इह—इस लोक में; मर्त्य-शिक्षणम्—समस्त जीवों को, विशेष रूप से मनुष्य को शिक्षा देने के लिए; रक्षः-वधाय—रावण असुर को मारने के लिए; एव—निश्चय ही; न—नहीं; केवलम्—केवल, मात्र; विभोः—श्रीभगवान् का; कुतः—कहाँ से; अन्यथा—अन्यथा; स्यात्—होगा; रमतः—रमण करने वाले का; स्वे—अपने आप में; आत्मनः—ब्रह्माण्ड का आत्म-स्वरूप; सीता—भगवान् रामचन्द्र की पत्नी सीता का; कृतानि—वियोग के कारण उत्पन्न; व्यसनानि—समस्त दुख; ईश्वरस्य—श्रीभगवान् के।

राक्षसों के नायक रावण को यह वर प्राप्त था कि उसका वध मनुष्य ही कर सकता है, इसलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र को मनुष्य रूप धारण करना पड़ा, किन्तु भगवान् रामचन्द्र का उद्देश्य मात्र रावण का वध करना ही नहीं था। वे तो मर्त्य-प्राणियों को यह शिक्षा देना चाहते थे कि भोग विलास अथवा पत्नी के चारों ओर केन्द्रित भौतिक सुख समस्त दुखों का कारण है। वे स्वयं में पूर्ण हैं और उन्हें किसी भी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं है। अतः भला वे माता

## सीता के अपहरण से क्या कष्ट भोगते ?

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (४.९) में कहा गया है, इस जगत में श्रीभगवान् दो उद्देश्यों से मनुष्य रूप धारण करते हैं—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—असुरों का वध करने और अपने भक्तों की रक्षा करने के हेतु। भक्तों की रक्षा करने के लिए वे न केवल अपनी उपस्थिति से वरन् भक्ति पर दृढ़ रहने की शिक्षा देकर उन्हें तुष्ट करते हैं। भगवान् रामचन्द्र ने अपने भक्तों को यह शिक्षा दी कि वैवाहिक जीवन में प्रवेश न करना बेहतर है क्योंकि इसीसे ही सारे कष्ट झेलने पड़ते हैं।

जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (७.९.४५) में पुष्टि की गई है—

*यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं*

*कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।*

*तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः*

*कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेतधीरः ॥*

आत्मज्ञान में समुन्नत न होने वाले *कृपण*, जो ब्राह्मणों से सर्वथा विपरीत हैं, गृहस्थ जीवन स्वीकार करते हैं जिसमें संभोग की छूट है और वे पुनः पुनः इन्द्रियसुख भोगते हैं यद्यपि इस इन्द्रियसुख के पश्चात् उन्हें नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। भक्तों के लिए यह चेतावनी है। भक्तों को तथा सारे मानव समाज को यह शिक्षा देने के लिए ही श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीभगवान् होते हुए भी नाना प्रकार के कष्टों को सहा, क्योंकि माता सीता को उन्होंने अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया था। निस्सन्देह, उन्होंने सारे कष्ट इसलिए झेले कि हमें शिक्षा मिले; वास्तव में उनके द्वारा पश्चात्ताप करने का कोई प्रयोजन नहीं था।

भगवान् की शिक्षाओं का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि एक बार पत्नी बना लेने के बाद मनुष्य को सत्यनिष्ठ होकर पत्नी की सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। मानव समाज में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं—वे जो धार्मिक नियमों का निष्ठा से पालन करते हैं तथा वे जो भक्त हैं। भगवान् रामचन्द्र अपने चरित्र से इन दोनों प्रकार के लोगों को यह बताना चाहते थे कि किस प्रकार धार्मिक नियमों का पालन करते हुए प्रिय तथा कर्तव्यनिष्ठ पति बना जा सकता है; अन्यथा भगवान् राम को इतने कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। धार्मिक नियमों का पालन करने वालों को चाहिए कि वे अपनी पत्नी



की रक्षा करने में उपेक्षा न बरतें। हो सकता है कि ऐसा करने में कुछ कष्ट उठाने पड़ें, किन्तु पति को इन्हें सहना ही चाहिए। सत्यनिष्ठ पति का यही कर्तव्य है। अपने साक्षात् दृष्टान्त से भगवान् रामचन्द्रजी ने इस कर्तव्य का प्रदर्शन किया। भगवान् रामचन्द्र चाहते तो अपनी इच्छाशक्ति से हजारों सीताएँ उत्पन्न कर सकते थे, किन्तु सत्यनिष्ठ पति का कर्तव्य निभाने के लिए ही न केवल रावण से सीता की रक्षा की, वरन् रावण का पूरे परिवार के साथ संहार किया।

भगवान् रामचन्द्र की शिक्षाओं का एक पक्ष यह भी है कि भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों को भले ही ऊपर से सांसारिक यातनाएँ झेलनी पड़ें, किन्तु इन यातनाओं से उनका कोई सरोकार नहीं है। वे तो सभी परिस्थितियों में मुक्त पुरुष हैं। इसीलिए *श्रीचैतन्य भागवत* में कहा गया है—

*यत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।*

*निश्चय जानिह ताहा परमानन्द-सुख ॥*

भक्ति में मग्न रहने के कारण वैष्णव सदैव दिव्य आनन्द का लाभ उठाता है। भले ही ऐसा लगे कि उसे भौतिक कष्ट है, किन्तु उसे दिव्य विरह अवस्था प्राप्त रहती है। प्रेमी तथा प्रेमिका को भले ही वियोग कष्टकर लगता हो, किन्तु वास्तव में यह होता है अत्यन्त आनन्ददायक। अतः सीतादेवी से भगवान् रामचन्द्र का वियोग तथा उसके बाद उनके द्वारा भोगी जाने वाली यातनाएँ एक प्रकार से उनके दिव्य-सुख को प्रकट करने वाली हैं। ऐसा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का अभिमत है।

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः

सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ।

न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत

न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—निस्सन्देह; सः—वह; आत्मा—परम-आत्मा; आत्मवताम्—स्वरूपसिद्धों का; सुहृत्-तमः—सर्वश्रेष्ठ मित्र; सक्तः—आसक्त; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों के भीतर कोई भी; भगवान्—श्रीभगवान्; वासुदेवः—सर्वव्यापी भगवान्; न—नहीं; स्त्री-कृतम्—अपनी पत्नी के कारण प्राप्त; कश्मलम्—वियोग-दुख; अश्नुवीत—प्राप्त करेगा; न—नहीं; लक्ष्मणम्—रामचन्द्र के लघु भ्राता लक्ष्मण; च—भी; अपि—निश्चय ही; विहातुम्—परित्याग करना; अर्हति—समर्थ होता है।

चूँकि भगवान् रामचन्द्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव हैं अतः वे इस भौतिक जगत से किसी प्रकार लिप्त नहीं हैं। वे सभी स्वरूपसिद्ध आत्माओं के परम प्रिय परमात्मा और उनके घनिष्ठ मित्र हैं। वे परम ऐश्वर्यवान् हैं। अतः पत्नी-विछोह के कारण उन्होंने न तो अधिक कष्ट

उठाये होंगे, न ही उन्होंने अपनी पत्नी तथा अपने लघु भ्राता लक्ष्मण का परित्याग किया। उनके लिए इन दोनों में किसी एक का भी परित्याग सर्वथा असम्भव था।

**तात्पर्य :** श्रीभगवान् की परिभाषा देते हुए हम यह कहते हैं कि वे छहों ऐश्वर्यों—धन, यश, बल, प्रभाव, रूप तथा त्याग—से युक्त हैं। इस भौतिक जगत से किसी प्रकार का लगाव न होने के कारण वे परित्यागी कहलाते हैं उनका लगाव वैकुण्ठ जगत और वहाँ की जीवात्माओं से है। भौतिक जगत के समस्त कार्यकलाप दुर्गादेवी की अध्यक्षता में संचालित होते हैं ( सृष्टि-स्थिति-प्रलय-साधन-शक्तिरेका। छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा )। दुर्गा के रूप में भौतिक शक्ति के कठोर नियमों के अन्तर्गत सब कुछ घटता है। फलतः भगवान् इस भौतिक जगत से पूर्णतः विरक्त रहते हैं और उन्हें इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती। सीतादेवी का सम्बन्ध वैकुण्ठ जगत से है। इसी प्रकार लक्ष्मण संकर्षण के प्रकाश (स्वांश) रूप हैं और भगवान् रामचन्द्र स्वयं वासुदेव हैं।

चूँकि भगवान् सदा दिव्यता से युक्त हैं अतः उन का लगाव उन सेवकों से रहता है जो उनकी दिव्य सेवा करते हैं। वे ब्राह्मण-गुणों से नहीं, वरन् जीवन के सत्य से लगाव रखते हैं। निस्सन्देह उनका लगाव भौतिक गुणों से किसी प्रकार नहीं रहता। यद्यपि वे समस्त जीवात्माओं के परमात्मा हैं, किन्तु जो आत्मसिद्ध हैं उनके समक्ष वे प्रकट होते हैं और अपने दिव्य भक्तों के लिए परमप्रिय हैं। चूँकि भगवान् रामचन्द्र ने मानव समाज को यह शिक्षा देने के लिए कि राजा को कितना कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए, अवतार लिया था, अतः उन्होंने माता सीता तथा लक्ष्मण का बाह्यतः परित्याग किया, उन्होंने उनका वास्तविक परित्याग नहीं किया था। अतः हमें आत्मसिद्ध पुरुषों से भगवान् रामचन्द्र के कार्यों को सीखना चाहिए। तभी भगवान् के दिव्य कार्यों को समझा जा सकता है।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं

न वाङ्म बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।

तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-

श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

न—न; जन्म—उच्च कुल में जन्म; नूनम्—निस्सन्देह; महतः—श्रीभगवान् का; न—न तो; सौभगम्—सौभाग्य; न—न तो; वाक्—शिष्टाचारपूर्वक बात करना; न—न तो; बुद्धिः—तीक्ष्ण बुद्धि; न—नहीं; आकृतिः—शरीर के अंग-प्रत्यंग; तोष-हेतुः—भगवान् के आनन्द का कारण; तैः—उक्त समस्त गुणों के द्वारा; यत्—क्योंकि; विसृष्टान्—अस्वीकृत; अपि—यद्यपि;

नः—हमको; वन-ओकसः—वनवासी; चकार—स्वीकार किया; सख्ये—मित्रता से; बत—हाय; लक्ष्मण-अग्र-जः—लक्ष्मण के बड़े भाई, भगवान् श्रीरामचन्द्र ने।

उच्चकुल में जन्म धारण करने, शारीरिक सौन्दर्य, वाक्कातुरी, तीक्ष्ण बुद्धि या श्रेष्ठ जाति अथवा राष्ट्र जैसे भौतिक गुणों के कारण कोई चाह कर भी भगवान् रामचन्द्र से मैत्री स्थापित नहीं कर सकता। उनसे मित्रता स्थापित करने के लिए इन गुणों की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा भला हम असभ्य वनवासियों को, बिना उच्च कुल में जन्म लिये तथा रूप-रंग न होते हुए और भद्र पुरुषों की भाँति बात कर सकने में सक्षम न होने पर भी अपने मित्रों के रूप में क्यों स्वीकार करते?

तात्पर्य : श्रीमती कुन्तीदेवी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उन्हें *अकिंचन-गोचर* कहा है। *अ* उपसर्ग का अर्थ है नहीं और *किंचन* का अर्थ होता है इस भौतिक जगत से सम्बन्धित। कोई अपने उच्च पद, सम्पत्ति, रूप, शिक्षा इत्यादि का कितना ही गर्व क्यों न करे, श्रीभगवान् के साथ मित्रता स्थापित करने में इनका कोई महत्त्व नहीं है, भले ही भौतिक आचार-विचार में इन गुणों को प्रधानता प्राप्त हो। जिनमें ये समस्त गुण होते हैं, उनसे भक्त बनने की आशा की जाती है और वैसा करने पर इन गुणों का सदुपयोग होता है। किन्तु जो उच्च जन्म, सम्पत्ति, शिक्षा तथा रूप से गर्वित हो उठते हैं ( *जन्मैश्वर्य-श्रुत-श्री* ) वे दुर्भाग्यवश न तो कृष्णभावनामृत की ओर उन्मुख होते हैं और न श्रीभगवान् को ही इन भौतिक गुणों की कोई परवाह है। श्रीभगवान् को तो भक्ति से प्राप्त किया जाता है ( *भक्त्या मामभिजानाति* )। श्रीभगवान् की सेवा करने के लिए भक्ति तथा उत्कट कामना ही पर्याप्त हैं। रूप गोस्वामी ने भी यही कहा है कि भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उत्कटता ही पर्याप्त है ( *लौल्यं एकं मूल्यम्* )। *चैतन्यभागवत* में कहा गया है—

*खोलावेचा सेवकेर देख भाग्यसीमा ।*

*ब्रह्मा शिव काँदै यार देखिया महिमा ॥*

*धने-जने-पांडित्ये कृष्ण नाहि पाइ ।*

*केवल भक्तिर वश चैतन्य-गोसाजि ॥*

“जरा खोलावेचा भक्त के परम भाग्य को तो देखो! उसकी महानता को देखकर ब्रह्माजी तथा शिव अश्रुपात करते हैं। किसी के पास चाहे कितनी ही शिष्य-सम्पत्ति, धन या विद्या क्यों न हो, उसे

इनसे भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्री चैतन्य महाप्रभु तो केवल विशुद्ध भक्ति के वश में होते हैं।” श्री चैतन्य महाप्रभु के परम आज्ञाकारी शिष्य का नाम खोलावेचा श्रीधर था, जिसका एकमात्र काम था केले की छाल के बने पात्र बेचना। उसे जितनी आमदनी होती उसका आधा वह गंगाजी की पूजा में व्यय कर देता था और शेष आधे से घर का काम चलाता था। कुल मिलाकर उस दरिद्र के पास एक झोपड़ी थी जिसकी छत टूटी थी और जिसमें अनेक छेद थे। वह पीतल के बर्तन नहीं खरीद सकता था, इसलिए वह लोहे के पात्र में जल पीता था। तो भी वह श्री चैतन्य महाप्रभु का परम भक्त था। वह एक ऐसा विशिष्ट उदाहरण है कि बिना किसी प्रकार के धन के भी कोई भगवान् का परम भक्त कैसे बन सकता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि कोई भाव भौतिक ऐश्वर्य के माध्यम से श्रीकृष्ण अथवा श्री चैतन्य गोसाईं के चरणकमल की शरण नहीं प्राप्त कर सकता; वह शरण तो केवल विशुद्ध भक्तिभाव से प्राप्त की जा सकती है।

*अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।*

*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥*

“मनुष्य को चाहिए कि वह बिना किसी भौतिक लाभ या सकाम कर्म या दार्शनिक चिन्तन के भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा दिव्य प्रेमाभक्ति से करे। यही विशुद्ध भक्ति है।”

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः

सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं

य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सुरः—देवता; असुरः—असुर; वा अपि—अथवा; अथ—अतः; वा—अथवा; अनरः—मनुष्य के अतिरिक्त ( पशु-पक्षी इत्यादि ); नरः—मनुष्य; सर्व-आत्मना—सब प्रकार से, हृदय से; यः—जो; सु-कृतज्ञम्—सरलता से आज्ञाकारी बनाया गया; उत्तमम्—सर्वोत्कृष्ट; भजेत—पूजा करनी चाहिए; रामम्—श्रीरामचन्द्र को; मनुज-आकृतिम्—मनुष्य रूप में प्रकट होकर; हरिम्—श्रीभगवान् को; यः—जो; उत्तरान्—उत्तरी भारत के; अनयत्—वापस ले गये; कोसलान्—कोशल देश, अयोध्यावासियों को; दिवम्—आध्यात्मिक जगत या वैकुण्ठ लोक में; इति—इस प्रकार।

अतः चाहे सुर हो या असुर, मनुष्य हो या मनुष्येतर प्राणी जैसे पशु या पक्षी, प्रत्येक को उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की पूजा करनी चाहिए जो इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् की पूजा के लिए किसी कठोर तप या साधना की आवश्यकता नहीं है,

क्योंकि वे अपने भक्त की तुच्छ सेवा को भी स्वीकार करने वाले हैं। इस प्रकार से वे तुष्ट हो जाते हैं और उनके तुष्ट होते ही भक्त सफल हो जाता है। निस्सन्देह, श्रीरामचन्द्र अयोध्या के समस्त भक्तों को वैकुण्ठ धाम वापस ले गये।

तात्पर्य : भगवान् श्रीरामचन्द्र अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु हैं कि वे किसी के द्वारा, चाहे मनुष्य हो या कुछ और, थोड़ी भी सेवा किये जाने पर सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र की पूजा करने का यही लाभ है। ऐसा ही लाभ श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने से होता है। श्रीकृष्ण तथा श्रीरामचन्द्र ने कभी कभी क्षत्रियों की भाँति असुरों का वध करके अपनी दया का प्रदर्शन किया, किन्तु भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने असुरों तक को सहज ही भगवत्प्रेम प्रदान किया। श्रीभगवान् के समस्त अवतारों ने विशेषतः श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण तथा बाद में भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूर्ववर्ती अनेक जीवात्माओं को मोक्ष प्रदान किया। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु को षड्भुज मूर्ति के रूप में प्रदर्शित किया जाता है जो श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु इन तीनों का सम्मिलित रूप है। मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य भगवान् के इस षड्भुज-रूप श्री रामचन्द्र की दो भुजाएँ, श्रीकृष्ण की दो और श्री चैतन्य महाप्रभु की दो भुजाएँ की आराधना से ही प्राप्त हो जाता है।

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य

आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया  
तपोऽव्यक्तगतिश्चरति. ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

भारते—भारत; अपि—भी; वर्षे—भूभाग में; भगवान्—श्रीभगवान्; नर-नारायण-आख्यः—नर-नारायण के नाम से विख्यात; आ-कल्प-अन्तम्—कल्पान्त तक; उपचित—वर्धमान; धर्म—धर्म; ज्ञान—ज्ञान; वैराग्य—वैराग्य; ऐश्वर्य—सम्पदा; उपशम—इन्द्रिय-निग्रह; उपरम—अहंकार से मुक्ति; आत्म-उपलम्भनम्—आत्म-साक्षात्कार; अनुग्रहाय—अनुग्रह हेतु; आत्म-वताम्—आत्म-साक्षात्कार में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को; अनुकम्पया—अहैतुकी दया से; तपः—तप; अव्यक्त-गतिः—अकथनीय महिमामय; चरति—करता है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोले—श्रीभगवान् की महिमा अकल्पनीय है। उन्होंने अपने भक्तों पर अनुग्रहवश उन्हें धर्म, ज्ञान, त्याग, अध्यात्म, इन्द्रिय-निग्रह तथा अहंकार से मुक्ति की शिक्षा प्रदान करने के लिए भारतवर्ष की भूमि में बदरिकाश्रम नामक स्थान पर अपने को नर-नारायण रूप में प्रकट किया है। वे आत्मज्ञान की सम्पदा से परिपूर्ण हैं और कल्पान्त तक तप में रत रहने वाले हैं। यही आत्म-साक्षात्कार की क्रिया है।

**तात्पर्य :** भारतवासी बदरिकाश्रम स्थित नर-नारायण के मन्दिर की यात्रा करके यह जान सकते हैं कि श्रीभगवान् किस प्रकार नर-नारायण के रूप में अवतरित हुए और जन-सामान्य को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की विधि समझाई। मात्र चिन्तन तथा संसारी कार्यों में मग्न रह कर आत्मानुभूति कर पाना असम्भव है। आत्म-साक्षात्कार एवं तपस्या के विषय में गम्भीर रहने की आवश्यकता होती है। दुर्भाग्यवश इस कलियुग के लोग तपस्या का अर्थ भी नहीं जानते। फलतः भगवान् ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में पतित आत्माओं को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की सरलतम विधि बताने के लिए अवतार लिया है, जिसे *चेतो-दर्पण मार्जनम्*—अर्थात् हृदय से मल को स्वच्छ करना कहा जा सकता है। यह विधि अत्यन्त सरल है। कोई भी श्रीकृष्ण-संकीर्तन—*हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे*—का जप कर सकता है। इस युग में तथाकथित उच्च विज्ञान के अनेक रूप हैं—यथा नृविज्ञान, मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, राष्ट्रवाद, उद्योगवाद, किन्तु यदि हम नर-नारायण द्वारा बताई गई सरल विधि का अनुसरण न करके इन वादों के निर्देशानुसार अत्यधिक श्रम करेंगे तो हमारा अमूल्य मानव जीवन बेकार हो जायेगा। इस प्रकार हम ठगे जाएँगे और पथविमुख होंगे।

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां साङ्ख्ययोगाभ्यां  
भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णोरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिवृणाति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको ( नर-नारायण ); भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली सन्त पुरुष; नारदः—नारद ऋषि; वर्ण-आश्रम-वतीभिः—चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के अनुयायियों द्वारा; भारतीभिः—भारतवर्ष नामक देश के; प्रजाभिः—वासियों द्वारा; भगवत्-प्रोक्ताभ्याम्—श्रीभगवान् द्वारा कथित; साङ्ख्य—सांख्य-योग द्वारा ( भौतिक गुणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ); योगाभ्याम्—योग के अभ्यास द्वारा; भगवत्-अनुभाव-उपवर्णनम्—जो भगवत्-प्राप्ति की क्रिया को बताता है; सावर्णोः—सावर्णि मनु को; उपदेक्ष्यमाणः—उपदेश करते हुए; परम-भक्ति-भावेन—अत्यन्त भक्तिभाव से; उपसरति—भगवान् की सेवा करता है; इदम्—इसे; च—तथा; अभिवृणाति—जप करता है।

नारद पंचरात्र नामक अपने ग्रंथ में भगवान् नारद ने अत्यन्त विस्तारपूर्वक बताया है कि किस प्रकार ज्ञान तथा योगक्रिया के द्वारा जीवन के परम लक्ष्य—भक्ति—को प्राप्त करने के लिए कार्य करना चाहिए। उन्होंने श्रीभगवान् की महिमा का भी वर्णन किया है। महर्षि नारद ने इस दिव्य साहित्य का उपदेश सावर्णि मनु को दिया, जिससे वह भारतवर्ष के उन वासियों को भगवान् की भक्ति प्राप्त करने की शिक्षा दे सकें, जो दृढ़तापूर्वक वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करते हैं। इस प्रकार नारद मुनि भारतवर्ष के अन्य निवासियों सहित नर-नारायण की सदा

सेवा करते हुए निम्नलिखित मंत्र का जप करते रहते हैं।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्पष्ट घोषणा की है—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

भारतवर्ष में मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति अथवा वास्तविक सफलता सहज ही प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि भारत वर्ष में जीवन-उद्देश्य तथा सफलता प्राप्ति की विधि सुस्पष्ट है। भारतवर्ष में प्राप्त होने वाले सुअवसर का लाभ लोगों को, विशेष रूप से उनको जो वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करने वाले हैं, उठाना चाहिए। यदि हम वर्णाश्रम धर्म के नियमों को—चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा चारों आश्रमों (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) को—स्वीकार करते हुए पालन नहीं करते तो जीवन में सफलता नहीं मिल सकती। दुर्भाग्यवश कलियुग के प्रभाव से प्रत्येक वस्तु की हानि हो रही है। भारतवर्ष के वासी धीरे-धीरे पतित म्लेच्छ तथा यवन बनते जा रहे हैं। तो फिर वे दूसरों को कैसे शिक्षा दे सकते हैं? इसीलिए इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को न केवल भारतवासियों के लिए, वरन् समस्त विश्व के मनुष्यों के लिए चलाया जा रहा है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया है। अब भी समय है और यदि भारतवासी इस आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें तो सारा जगत अधोगति को प्राप्त होने से बच सकता है। यह आन्दोलन पंचरात्रिक विधि के साथ ही भागवत विधि का पालन करता है, जिससे मनुष्य इस आन्दोलन का लाभ उठाकर अपने जीवन को सफल बना सके।

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय  
परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ओम्—हे परमेश्वर; नमः—मेरा सादर नमस्कार; भगवते—श्रीभगवान् को; उपशम-शीलाय—जिन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है; उपरत-अनात्म्याय—भौतिक जगत से विरक्त; नमः—नमस्कार; अकिञ्चन-वित्ताय—धनहीन व्यक्तियों के सम्पत्ति स्वरूप श्रीभगवान् को; ऋषि-ऋषभाय—ऋषियों में श्रेष्ठ को; नर-नारायणाय—नर नारायण को; परमहंस-परम-गुरवे—परमहंसों अर्थात् मुक्त पुरुषों के परम आदरणीय गुरु; आत्माराम-अधिपतये—आत्मारामों में श्रेष्ठ; नमः नमः—बारम्बार नमस्कार है; इति—इस प्रकार।

मैं समस्त सन्त पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् नर-नारायण को सादर नमस्कार करता हूँ। वे

अत्यन्त आत्मसंयमित तथा आत्माराम हैं, वे झूठी प्रतिष्ठा से परे हैं और निर्धनों की एकमात्र सम्पदा हैं। वे मनुष्यों में परम सम्माननीय समस्त परमहंसों के गुरु हैं और आत्मसिद्धों के स्वामी हैं। मैं उनके चरणकमलों को पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

गायति चेदम्—  
कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते  
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।  
द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते  
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गायति—गाता है; च—तथा; इदम्—यह; कर्ता—करने वाला; अस्य—इस जगत का; सर्ग—आदिषु—सृष्टि, पालन तथा संहार का; यः—जो; न बध्यते—सृष्टिकर्ता या स्वामी के रूप में लिप्त नहीं है; न—नहीं; हन्यते—पीड़ित किया जाता है; देह-गतः अपि—मनुष्य के रूप में प्रकट होकर भी; दैहिकैः—भूख, प्यास, थकान जैसी शारीरिक यातनाओं के द्वारा; द्रष्टुः—सर्व द्रष्टा को; न—नहीं; दृक्—दृष्टि-शक्ति; यस्य—जिसकी; गुणैः—भौतिक गुणों के द्वारा; विदूष्यते—कलुषित हो जाता है; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार है; असक्त—अनासक्त श्रीभगवान् को; विविक्त—बिना प्यार के; साक्षिणे—सब का साक्षी।

परम शक्तिमान ऋषि नारद नर-नारायण की आराधना निम्नलिखित मंत्र का जप करके करते हैं—“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस दृश्य जगत के सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक हैं, तो भी वे मिथ्या अभिमान से पूर्णतया मुक्त हैं। यद्यपि मूढ़ों के लिए उन्होंने हमारे समान शरीर धारण करना स्वीकार किया प्रतीत होता है, किन्तु उन्हें भूख, प्यास तथा थकान जैसे शारीरिक कष्ट नहीं सताते। यद्यपि वे सर्वद्रष्टा हैं, किन्तु जिन वस्तुओं को वे देखते हैं उनसे उनकी इन्द्रियाँ दूषित नहीं होती। मैं ऐसे अनासक्त, जगत के साक्षी, परमात्मास्वरूप श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।”

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण को “सच्चिदानन्द विग्रह” के रूप में वर्णित किया गया है। इस श्लोक में उनका विशेष वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण इस सम्पूर्ण विराट जगत के कर्ता हैं, किन्तु वे इससे अनासक्त रहते हैं। यदि हम गगनचुम्बी भवन का निर्माण करें तो हम इसके प्रति अत्यधिक आसक्त होंगे, किन्तु श्रीकृष्ण इतने अनासक्त हैं कि सब कुछ उत्पन्न करके भी किसी वस्तु से लिप्त नहीं हैं ( न बध्यते )। यही नहीं, श्रीकृष्ण का दिव्य रूप सच्चिदानन्द विग्रह है। उन्हें दैहिक आवश्यकताएँ नहीं सतातीं। उदाहरणार्थ, न तो उन्हें भूख लगती है, न प्यास, न थकावट ( न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः )। सचमुच ही, चूँकि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण की है, वे सब कुछ देखते हैं और सर्वत्र विद्यमान हैं, किन्तु



दिव्य देह होने के कारण वे दृष्टि, दृष्टि की इन्द्रियों तथा दृष्टि प्रक्रिया से परे हैं। जब हम कोई सुन्दर वस्तु देखते हैं, तो उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। सुन्दर स्त्री को देखते ही पुरुष तुरन्त आकर्षित होता है और पुरुष को देखकर स्त्री आकृष्ट होती है। किन्तु श्रीकृष्ण इन समस्त दोषों से परे हैं। वे सर्वद्रष्टा हैं, उनकी दृष्टि दूषित नहीं होती ( न दृग् यस्य गुणैर्विदूष्यते ) अतः वे साक्षी हैं और कर्मों के मोह से पृथक् रहने वाले हैं। वे सदैव निर्लिप्त तथा पृथक् रहते हैं, वे मात्र साक्षी हैं।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं

हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ।

यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो

भक्त्या दधीतोऽञ्जितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; हि—निश्चयपूर्वक; योग-ईश्वर—हे समस्त योगशक्ति के स्वामी; योग-नैपुणम्—योगिक नियमों की साधना में दक्ष; हिरण्य-गर्भः—भगवान् ब्रह्मा; भगवान्—सर्वशक्तिमान; जगाद—कहा; यत्—जो; यत्—जो; अन्त-काले—मृत्यु के समय; त्वयि—तुममें ( आप में ); निर्गुणे—सत्त्व; मनः—मन ( मस्तिष्क ); भक्त्या—भक्तिपूर्वक; दधीत—रखना चाहिए; अञ्जित-दुष्कलेवरः—भौतिक शरीर के साथ ही अपना स्वरूप त्याग करके।

हे योगेश्वर, आत्माराम भगवान् ब्रह्मा ( हिरण्यगर्भ ) ने योगक्रिया के विषय में जो कुछ कहा है यह उसकी व्याख्या है। मृत्यु के समय सभी योगी आपके चरण-कमलों में अपना मन स्थापित करके अपने भौतिक शरीर को त्यागते हैं। यह योग सिद्धि है।

तात्पर्य : श्रील मध्वाचार्य कहते हैं—

यस्य सम्यग् भगवति ज्ञानं भक्तिस्तथैव च।

निश्चिन्तस्तस्य मोक्षः स्यात् सर्वपापकृतोऽपि तु ॥

“जो श्रीभगवान् की वास्तविक स्थिति समझने के उद्देश्य से अपने जीवनकाल में गम्भीरतापूर्वक भक्ति करता है उसकी इस जगत से मुक्ति निश्चित है, भले ही वह पापाचार क्यों न करता रहा हो।” भगवद्गीता (९.३०) में भी इसकी पुष्टि की गई—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

“यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरी अनन्यभक्ति के परायण हो जाये, तो उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि वह मेरी एकान्त निष्ठा रूपी श्रेष्ठ निश्चय वाला है।” इस जीवन का एकमात्र उद्देश्य

श्रीकृष्ण के विचारों तथा उसके रूप, लीलाओं, कार्यों और गुणों में पूर्णतः मग्न रहना है। यदि कोई इस प्रकार श्रीकृष्ण के विषय में चौबीसों घंटे सोच सकता है, तो वह पहले से मुक्त है (स्वरूपेण व्यवस्थितिः)। जहाँ भौतिकतावादी लोग सांसारिक विचारों तथा कार्यों में मग्न रहते हैं वहाँ भक्तजन श्रीकृष्ण के विचारों एवं उनकी क्रियाओं में डूबे रहते हैं। अतः वे मोक्ष के पद को पहले ही प्राप्त कर चुके होते हैं। मृत्यु के समय मनुष्य को चाहिए कि पूर्णतः श्रीकृष्ण के विचार में मग्न रहे। तभी वह श्रीभगवान् के धाम को निश्चित रूप से लौट सकेगा।

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः

सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।

शङ्केत विद्वान्कुक्लेवरात्ययाद्

यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; ऐहिक—इस जीवन में; अमुष्मिक—भावी जीवन में; काम-लम्पटः—कामवासनाओं में लिप्त रहने वाला पुरुष; सुतेषु—सन्तान; दारेषु—पत्नी; धनेषु—सम्पत्ति में; चिन्तयन्—सोचते हुए; शङ्केत—भयभीत रहता है; विद्वान्—आत्मज्ञानी पुरुष; कु-कलेवर—इस मलमूत्र से पूरित शरीर का; अत्ययात्—क्षति के कारण; यः—जो कोई; तस्य—उसका; यत्नः—प्रयास; श्रमः—समय एवं शक्ति का अपव्यय; एव—निश्चय ही; केवलम्—मात्र, केवल।

सामान्य रूप से भौतिकतावादी जन अपने वर्तमान तथा भावी शारीरिक सुखों में अत्यन्त लिप्त रहते हैं। अतः वे अपनी पत्नी, सन्तान तथा सम्पत्ति के विचारों में सदैव मग्न रहते हैं और इस मलमूत्र से भरे हुए शरीर को त्यागने से भयभीत रहते हैं। यदि कृष्णभक्ति में संलग्न व्यक्ति भी अपने शरीर-त्याग से भयभीत हों तो फिर शास्त्रों के अध्ययन में किये श्रम का क्या लाभ? यह केवल समय की बरबादी है।

तात्पर्य : मृत्यु के समय भौतिकतावादी व्यक्ति अपनी पत्नी तथा सन्तान के विषय में सोचता रहता है। वह इसी सोच में डूबता-उतराता रहता है कि उसकी मृत्यु के बाद उनकी देखभाल कौन करेगा और वे कैसे रहेंगे। अतः वह कभी भी शरीर नहीं छोड़ना चाहता, वरन् वह जीवित रहकर अपने समाज, परिवार, मित्र इत्यादि की सेवा करते रहना चाहता है। अतः उसे चाहिए कि योगाभ्यास द्वारा ऐहिक सम्बन्धों से विरक्त हो जाये। यदि भक्तियोग की साधना तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् भी मनुष्य इस कुदेह का जो मन के कष्टों की जड़ है परित्याग करने से भयभीत होता है, तो आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का प्रयास करने से क्या लाभ? योग साधना का रहस्य शारीरिक लगाव से

मुक्त होना है। श्रील नरोत्तदास ठाकुर का कथन है कि देह-स्मृति नाहि यार, संसार-बंधन काहाँ तार— जिसके अभ्यास से दैहिक चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है उसे अधिक काल तक बद्ध जीवन नहीं बिताना पड़ता। ऐसे व्यक्ति का बन्धन से छुटकारा हो जाता है। कृष्णभावनामृत में लगे व्यक्ति को बिना किसी भौतिक आसक्ति के पूर्णरूपेण अपना भक्तिकार्य संपन्न करना चाहिए। तभी उसकी मुक्ति निश्चित है।

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां

त्वन्माययाहंममतामधोक्षज ।

भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां

विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; नः—हमारी; प्रभो—हे प्रभो; त्वम्—आप (तुम); कु-कलेवर-अर्पिताम्—मलमूत्र से पूरित इस बुरे शरीर में लगे हुए; त्वत्-मायया—आपकी माया से; अहम्-ममताम्—“मैं और मेरा” का विचार; अधोक्षज—हे सत्त्व; भिन्द्याम—त्याग सकता है; येन—जिससे; आशु—शीघ्र ही; वयम्—हम; सुदुर्भिदां—जिसको त्याग पाना दुष्कर है; विधेहि—कृपया प्रदान करें; योगम्—क्रिया; त्वयि—आपको; नः—हमारा; स्वभावम्—जो स्थिर मन के द्वारा जाना जाता है; इति—इस प्रकार।

अतः हे प्रभो, हे अधोक्षज, कृपा करके हमें भक्तियोग साधने की शक्ति प्रदान करें जिससे हम अपने अस्थिर मन को वश में करके आप में लगा सकें। हम सभी आपकी माया से प्रभावित हैं, अतः हम मलमूत्र से पूरित शरीर तथा इससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु के प्रति अत्यधिक समर्पित हैं। इस आसक्ति को त्यागने का एकमात्र उपाय भक्ति है, अतः आप हमें यह वर दें।

तात्पर्य : भवद्गीता में श्रीकृष्ण का उपदेश है—मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन, भक्ति में व्यस्तता, सदैव श्रीकृष्ण की पूजा और उनको नमस्कार करना—ये पूर्ण योगक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। इस योगक्रिया को किये बिना इस मल-मूत्र पूरित शरीर के प्रति मोह को त्याग पाना दुष्कर है। योग की सिद्धि इसी में है कि देह के प्रति जो भी मोह है उसे श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति में परिणत कर दिया जाये। हम सांसारिक सुख में अत्यधिक लिप्त हैं, किन्तु जब हम श्रीकृष्ण के प्रति वैसी आसक्ति उत्पन्न कर लेते हैं, तो हमारे उद्धार का मार्ग प्रशस्त होता है। मनुष्य को चाहिए कि इसी योग-प्रक्रिया का पालन करे।

भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिरूष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याताः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भारते—भारतवर्ष में; अपि—भी; अस्मिन्—इस; वर्षे—भूभाग में; सरित्—नदियाँ; शैलाः—पर्वत; सन्ति—हैं; बहवः—अनेक; मलयः—मलय; मङ्गल-प्रस्थः—मंगलप्रस्थ; मैनाकः—मैनाक पर्वत; त्रि-कूटः—त्रिकूट पर्वत; ऋषभः—ऋषभ; कूटकः—कूटक; कोल्लकः—कोल्लक; सह्यः—सह्य; देवगिरिः—देवगिरि; ऋष्य-मूकः—ऋष्यमूक; श्री-शैलः—श्रीशैल; वेङ्कटः—वेंकट; महेन्द्रः—महेन्द्र; वारि-धारः—वारिधार; विन्ध्यः—विन्ध्याचल; शुक्तिमान्—शुक्तिमान्; ऋक्ष-गिरिः—ऋक्षगिरि; पारियात्रः—पारियात्र; द्रोणः—द्रोण; चित्र-कूटः—चित्रकूट; गोवर्धनः—गोवर्धन; रैवतकः—रैवतक; ककुभः—ककुभ; नीलः—नील; गोकामुखः—गोकामुख; इन्द्रकीलः—इन्द्रकील; काम-गिरिः—कामगिरि; इति—इस प्रकार; च—तथा; अन्ये—अन्य; च—भी; शत-सहस्रशः—सैकड़ों तथा हजारों; शैलाः—पर्वत; तेषाम्—उनके; नितम्ब-प्रभवाः—ढालों से उत्पन्न; नदाः—बड़ी-बड़ी नदियाँ; नद्यः—छोटी नदियाँ; च—और; सन्ति—हैं; असङ्ख्याताः—असंख्य।

इलावृत-वर्ष की भाँति ऋक्ष गिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, ऐवतक, भारतवर्ष में भी अनेक पर्वत और नदियाँ हैं। कुछ पर्वत इस प्रकार हैं—मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधारा, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष गिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, ऐवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि। इनके अतिरिक्त अनेक पहाड़ियाँ हैं जिनकी ढालों से अनेक बड़ी तथा छोटी नदियाँ निकलती हैं।

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति; चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णावेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिरूषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुद्वधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ १७१८ ॥

शब्दार्थ

एतासाम्—इन सबों का; अपः—जल; भारत्यः—भारतवर्ष के; प्रजाः—वासी; नामभिः—नामों से; एव—केवल; पुनन्तीनाम्—पवित्र बनाती हैं; आत्मना—मन; च—भी; उपस्पृशन्ति—स्पर्श करती हैं; चन्द्र-वसा—चन्द्रवसा; ताम्र-पर्णी—ताम्र-पर्णी; अवटोदा—अवटोदा; कृत-माला—कृतमाला; वैहायसी—वैहायसी; कावेरी—कावेरी; वेणी—वेणी; पयस्विनी—पयस्विनी; शर्करावर्ता—शर्करावर्ता; तुङ्ग-भद्रा—तुंगभद्रा; कृष्णा-वेण्या—कृष्णावेण्या; भीम-रथी—भीमरथी; गोदावरी—गोदावरी; निर्विन्ध्या—निर्विन्ध्या; पयोष्णी—पयोष्णी; तापी—तापी; रेवा—रेवा; सुरसा—सुरसा; नर्मदा—नर्मदा; चर्मण्वती—चर्मण्वती; सिन्धुः—सिन्धु; अन्धः—अन्ध; शोणः—शोण; च—तथा; नदौ—दो नदियाँ; महा-नदी—महानदी; वेद-स्मृतिः—वेदस्मृति; ऋषि-कुल्या—ऋषिकुल्या; त्रि-सामा—त्रिसामा; कौशिकी—कौशिकी; मन्दाकिनी—मन्दाकिनी; यमुना—यमुना; सरस्वती—सरस्वती; दृषद्वती—दृषद्वती; गोमती—गोमती; सरयू—सरयू; रोधस्वती—रोधस्वती; सप्तवती—सप्तवती; सुषोमा—सुषोमा; शत-द्रुः—शतद्रु; चन्द्रभागा—चन्द्रभागा; मरुद्वधा—मरुद्वधा; वितस्ता—वितस्ता; असिक्नी—असिक्नी; विश्वा—विश्वा; इति—इस प्रकार; महा-नद्यः—बड़ी नदियाँ।

नदियों में से दो नदियाँ—ब्रह्मपुत्र तथा शोण—नद अथवा महा नदियाँ कहलाती हैं। अन्य

प्रमुख बड़ी नदियाँ इस प्रकार हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णावेण्या, भीमरथी, गोदावरी, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विश्वा। भारतवर्ष के वासी इन नदियों का स्मरण करने से पवित्र रहते हैं। कभी-कभी वे इन नदियों के नामों का मंत्रवत् जाप करते हैं और कभी-कभी जाकर इनका स्पर्श और इनमें स्नान भी करते हैं। इस तरह भारतवर्ष के निवासी पवित्र होते रहते हैं।

तात्पर्य : ये समस्त नदियाँ दिव्य हैं। अतः इनके स्मरण, स्पर्श या स्नान से पवित्र हुआ जा सकता है। आज भी यह प्रथा चालू है।

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णावर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

अस्मिन् एव वर्षे—इसी भूभाग ( भारतवर्ष ) में; पुरुषैः—पुरुषों के द्वारा; लब्ध-जन्मभिः—जन्म देने वालों के द्वारा; शुक्ल—सत्त्वगुण का; लोहित—रजोगुण का; कृष्ण—तमोगुण का; वर्णेन—वर्ण ( विभाग ) के अनुसार; स्व—स्वयं; आरब्धेन—प्रारम्भ किया हुआ; कर्मणा—कर्म के द्वारा; दिव्य—दिव्य, दैवी; मानुष—मानवीय; नारक—नारकीय; गतयः—गन्तव्य; बह्व्यः—अनेक; आत्मनः—स्वयं का; आनुपूर्व्येण—पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार; सर्वाः—समस्त; हि—निश्चय-पूर्वक; एव—निस्सन्देह; सर्वेषाम्—सबों का; विधीयन्ते—भाग्य में लिखा है; यथा-वर्ण-विधानम्—विभिन्न वर्णों के अनुसार; अपवर्गः—मुक्ति का मार्ग; च—और; अपि—भी; भवति—सम्भव है।

इस भूभाग में जन्म लेने वाले व्यक्ति गुणों—सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—के अनुसार विभाजित हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त महान् व्यक्तियों के रूप में, कुछ सामान्य व्यक्तियों के रूप में और कुछ अत्यन्त निम्न व्यक्तियों के रूप में जन्म लेते हैं, क्योंकि भारतवर्ष में मनुष्य का विगत कर्म के अनुसार जन्म होता है। यदि प्रामाणिक गुरु के द्वारा किसी भी मनुष्य की स्थिति निश्चित की जाये और यदि उसे चार वर्णों ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ) तथा चार आश्रमों ( ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास ) के अनुसार भगवान् विष्णु की सेवा में रत होने का सही-सही प्रशिक्षण दिया जाये तो उसका जीवन सफल हो सकता है।

तात्पर्य : अधिक जानकारी के लिए भगवद्गीता ( १४.१८ तथा १८.४२-४५ ) देखना चाहिए। श्रील रामानुजाचार्य ने अपनी पुस्तक वेदान्त संग्रह में लिखा है—

एवंविधपराभक्तिस्वरूपज्ञानविशेषस्योत्पादकः

पूर्वोक्ताहरहरूपचीयमानज्ञानपूर्वककर्मानुगृहीतभक्तियोग एव; यथोक्तं भगवता पराशरेण—वर्णाश्रमेति।  
निखिलजगदुद्धारणायावनितलेऽवतीर्णं परमब्रह्मभूतः पुरुषोत्तमः स्वयमेतदुक्तवान्—“स्वकर्म-निरतः  
सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु” “यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं  
विन्दति मानवः ॥”

महर्षि पराशर मुनि ने विष्णु-पुराण (३८९) से उद्धरण देते हुए संस्तुति की है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पंथा नान्यत्के ततोषकारणम् ॥

“वर्णाश्रम प्रणाली में उल्लिखित कर्तव्यों के सही-सही पालन द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है। भगवान् को तुष्ट करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।” भारतवर्ष में वर्णाश्रम-धर्म का सरलता से पालन हो सकता है। इस समय भारतवर्ष के कुछ आसुरी वर्ण वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली की उपेक्षा कर रहे हैं। चूँकि लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि किस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बना जा सकता है या ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी कैसे बना जाता है कोई संस्था नहीं है, अतः ये असुर वर्गहीन समाज चाहते हैं। इससे अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। धर्मनिरपेक्ष सरकार के नाम पर अयोग्य व्यक्ति सर्वोच्च शासकीय पद हथिया रहे हैं। किसी को भी वर्णाश्रम-धर्म के नियमों के अनुसार कार्य करने की शिक्षा नहीं दी जा रही है, जिससे मनुष्य अत्यन्त पतित हो कर पशु-जीवन की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। जीवन का मुख्य उद्देश्य मुक्ति है, किन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्यों को मुक्ति का अवसर नहीं दिया जाता जिससे उनका जीवन विनष्ट हो रहा है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सम्पूर्ण विश्व में वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली की पुनः-स्थापना करने और मानव समाज को नारकीय जीवन में गिरने से बचाने के लिए प्रवर्द्धित किया जा रहा है।

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो  
नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; असौ—उस; भगवति—श्रीभगवान् में; सर्व-भूत-आत्मनि—समस्त जीवात्माओं के परम आत्मा; अनात्म्ये—  
लगाव रहित; अनिरुक्ते—मन तथा वाणी से परे; अनिलयने—अन्य किसी पर आश्रित नहीं; परम-आत्मनि—परमात्मा में;

वासुदेवे—भगवान् वासुदेव, वसुदेव के पुत्र; अनन्य—अद्वय; निमित्त—कारण; भक्ति-योग-लक्षणः—शुद्ध भक्ति के लक्षणों से युक्त; नाना-गति—विभिन्न गन्तव्यों का; निमित्त—कारण; अविद्या-ग्रन्थि—अज्ञानरूपी बन्धन; रन्धन—काटने का; द्वारेण—साधन द्वारा; यदा—जब; हि—निस्सन्देह; महा-पुरुष—श्रीभगवान् का; पुरुष—भक्त के साथ; प्रसङ्गः—घनिष्ठ सम्बन्ध।

अनेकानेक जन्मों के पश्चात्, मनुष्य को अपने पुण्यकर्मों के फलित होने पर शुद्ध भक्तों की संगति का अवसर प्राप्त होता है। तभी उसके अज्ञानरूपी बन्धन की ग्रंथि, जो उसके नाना प्रकार के सकाम कर्मों के कारण जकड़े रहती है, कट पाती है। भक्तों की संगति करने से धीरे-धीरे ऐसे भगवान् वासुदेव की सेवा में मन लगने लगता है, जो दिव्य हैं, भौतिक बन्धनों से मुक्त हैं, मन एवं वाणी से परे हैं तथा परम स्वतंत्र हैं। यही भक्तियोग अर्थात् भगवान् वासुदेव की भक्ति ही मुक्ति का वास्तविक मार्ग है।

**तात्पर्य :** ब्रह्म-साक्षात्कार मुक्ति का शुभारम्भ है तथा परमात्मा-साक्षात्कार मुक्ति की ओर एक पग और आगे है। किन्तु किसी को वास्तविक मुक्ति तभी मिलती है जब वह अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शाश्वत दास मानने लगता है ( *मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः* )। इस भौतिक जगत में देहात्मबुद्धि से प्रत्येक प्राणी उल्टी दिशा में कार्यशील रहता है। जब वह ब्रह्मभूत हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान होता है कि वह देह नहीं है और जीवन का देहात्मबोध वृथा तथा उल्टी दिशा में ले जाने वाला है। तब उसकी भक्ति प्रारम्भ होती है। *भगवद्गीता* (१८.५४) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।*

*समः सर्वेषु भूतेषु भद्भक्तिं लभते पराम् ॥*

“ब्रह्मभूत पुरुष को तत्काल परब्रह्म की अनुभूति होती है और पूर्णतया आनन्दमय हो जाता है। वह न शोक करता है और न ही इच्छा ही करता है; वह सब प्राणियों में समभाव रखता है। इस अवस्था में उसे मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त होती है।” भक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। जब मनुष्य श्रीभगवान् के सौन्दर्य से आकर्षित होता है और उसका मन उनके चरणकमलों में सदा लगा रहता है, तब उसे वे सारे विषय नहीं रुचते जिनसे आत्म-साक्षात्कार में बाधा पहुँचती हो। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त प्रकार के कार्यों के प्रति उसका आकर्षण जाता रहता है। *तैत्तिरीय उपनिषद्* (२.७) में कहा गया है— *एष ह्येवानन्दयति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्न दृश्येऽनात्म्ये अनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दतेऽथ सोऽभयं गतो भवति।* जब जीवात्मा यह समझ लेता है कि उसका सुख आत्म-साक्षात्कार पर निर्भर है

जो आनन्द का मूल तत्त्व है और जब वह निरन्तर सर्वोपरि भगवान् की सेवा में निरत रहता है। तो वह सिद्ध तथा आनन्दमय जीवन बिताने लगता है।

एतदेव हि देवा गायन्ति—  
अहो अमीषां किमकारि शोभनं  
प्रसन्न एषां स्वदुत स्वयं हरिः ।  
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे  
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; देवाः—सभी देवता; गायन्ति—कीर्तन करते हैं; अहो—अरे; अमीषाम्—भारतवर्ष के इन वासियों का; किम्—क्या; अकारि—किया गया; शोभनम्—पवित्र सुन्दर कार्य; प्रसन्नः—प्रसन्न; एषाम्—उन पर; स्वित्—अथवा; उत—कहा गया; स्वयम्—स्वयं; हरिः—श्रीभगवान्; यैः—जिसके द्वारा; जन्म—जन्म; लब्धम्—प्राप्त किया; नृषु—मानव समाज में; भारत-अजिरे—भारतवर्ष के प्रांगण में; मुकुन्द—मुक्तिदाता श्रीभगवान्; सेवा-औपयिकम्—सेवा करने का माध्यम, स्वरूप; स्पृहा—इच्छा; हि—निस्सन्देह; नः—हमारी।

चूँकि आत्मसाक्षात्कार के लिए मनुष्य-जीवन ही परम पद है, अतः स्वर्ग के सभी देवता इस प्रकार कहते हैं—इन मनुष्यों के लिए भारतवर्ष में जन्म लेना कितना आश्चर्यजनक है। इन्होंने भूतकाल में अवश्य ही कोई तप किया होगा अथवा श्रीभगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न हुए होंगे। अन्यथा वे इस प्रकार से भक्ति में संलग्न क्योंकर होते? हम देवतागण भक्ति करने के लिए भारतवर्ष में मनुष्य जन्म धारण करने की मात्र लालसा कर सकते हैं, किन्तु ये मनुष्य पहले से भक्ति में लगे हुए हैं।

तात्पर्य : चैतन्यचरितामृत (आदि ९.४१) में इन तथ्यों की विशद व्याख्या है—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

“जिसने भारत देश में मनुष्य का जन्म लिया है उसे अपना जीवन सार्थक बनाना चाहिए और परोपकार करना चाहिए।”

भारतवर्ष में भक्ति करने की अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ के अनेक आचार्यों ने अपने अनुभवों का योगदान किया है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने साक्षात् प्रकट होकर भारतवर्ष के वासियों को यह शिक्षा दी कि किस प्रकार परमार्थ जीवन में आगे बढ़ना और भगवान् की भक्ति में स्थिर होना चाहिए। सभी प्रकार से भारत देश विशिष्ट है, जहाँ भक्ति को सरलता में समझ कर अपने जीवन को सफल



बनाया जा सकता है। यदि कोई भक्ति में सफलता प्राप्त करके विश्व के अन्य भागों में भक्ति का उपदेश देता है, तो उससे विश्वभर के लोग लाभ उठा सकेंगे।

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-  
 र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।  
 न यत्र नारायणपादपङ्कज-  
 स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ है; दुष्करैः—अत्यन्त कठिन; नः—हमारा; क्रतुभिः—यज्ञों के करने से; तपः—तप से; व्रतैः—व्रत से; दान-  
 आदिभिः—दान देने आदि से; वा—अथवा; द्युजयेन—स्वर्गलोक की प्राप्ति से; फल्गुना—तुच्छ; न—नहीं; यत्र—जहाँ;  
 नारायण-पाद-पङ्कज—भगवान् नारायण के चरणकमल; स्मृतिः—स्मरण; प्रमुष्ट—खोया हुआ; अतिशय—अत्यधिक; इन्द्रिय-  
 उत्सवात्—भौतिक इन्द्रियतृप्ति के कारण।

देवता आगे कहते हैं—वैदिक यज्ञों के करने, तप करने, व्रत रखने तथा दान देने जैसे दुष्कर कार्यों के करने के पश्चात् ही हमें स्वर्ग में निवास करने का यह पद प्राप्त हुआ है। किन्तु हमारी इस सफलता का क्या महत्त्व है? यहाँ हम निश्चय ही भौतिक इन्द्रियतृप्ति में व्यस्त रहकर भगवान् नारायण के चरणकमलों का स्मरण तक नहीं कर पाते। अत्यधिक इन्द्रिय तृप्ति के कारण हम उनके चरणकमलों को लगभग विस्मृत ही कर चुके हैं।

तात्पर्य : भारत देश की इतनी महिमा है कि यहाँ जन्म लेने वाले को न केवल स्वर्गलोक का लाभ होता है वरन् वे सीधे भगवान् के धाम को वापस पहुँचते हैं। *भगवद्गीता* (९.२५) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

“देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को, भूतों को पूजने वाले भूतों को और जो मेरे भक्त हैं, वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।” भारतवर्ष के वासी सामान्य रूप से वैदिक नियमों का पालन करते हैं, जिससे वे महान् यज्ञों को करते हुए स्वर्गलोकों को प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु इतनी बड़ी उपलब्धि का क्या लाभ? जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२१) में कहा गया है—  
 क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशान्ति—यज्ञ, दान तथा अन्य पुण्यकर्मों के क्षीण होने पर मनुष्य को मर्त्यलोक में वापस आकर पुनः जन्म और मृत्यु के कष्टों का अनुभव करना होता है। किन्तु यदि कोई

कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो वह श्रीकृष्ण के पास वापस जा सकता है ( *यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्* ) । अतः देवताओं को भी इस बात का दुख है कि वृथा ही वे स्वर्गलोक के उच्च पद पर स्थित हैं । उन्हें इस बात का खेद है कि उनका जन्म भारतवर्ष में क्यों नहीं हुआ । इसके विपरीत वे उच्चस्तर इन्द्रियतृप्ति के लोभ में आकर मृत्यु के समय भगवान् नारायण के चरणकमलों को भूल जाते हैं । निष्कर्ष यह है कि जिसने भारतवर्ष में जन्म धारण लिया है उसे श्रीभगवान् द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना होगा । *यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्भाम परमं मम*—मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के धाम अर्थात् वैकुण्ठलोक या फिर गोलोक वृन्दावन वापस पहुँचे जहाँ वह श्रीभगवान् के संग आनन्दपूर्वक शाश्वत जीवन बिता सके ।

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्

क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।

क्षणो न मर्त्येन कृतं मनस्विनः

सन्न्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

कल्प-आयुषाम्—जो ब्रह्मा के समान कई कल्पों तक जीवित रहते हैं; स्थान-जयात्—स्थान अथवा लोकप्राप्ति की अपेक्षा; पुनः-भवात्—जन्म, मृत्यु और जरा की सम्भावना से; क्षण-आयुषाम्—ऐसे पुरुषों का जिनकी आयु केवल एक सौ वर्ष है; भारत-भू-जयोः—भारतवर्ष में जन्म; वरम्—श्रेष्ठ है; क्षणो न—क्षणिक जीवन के लिए; मर्त्येन—शरीर के द्वारा; कृतम्—किया हुआ कार्य; मनस्विनः—जीवन के सार को ठीक से समझने वाले; सन्न्यस्य—श्रीकृष्ण के चरणकमलों में आत्म-समर्पण करते हुए; संयान्ति—प्राप्त करते हैं; अभयम्—चिन्तारहित; पदम्—धाम; हरेः—श्रीभगवान् का ।

ब्रह्मलोक में करोड़ों-अरबों वर्ष की आयु प्राप्त करने की अपेक्षा भारतवर्ष में अल्पायु प्राप्त करना श्रेयस्कर है, क्योंकि ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेने के बाद भी बारम्बार जन्म तथा मरण के चक्र में पड़ना होता है । यद्यपि मर्त्यलोक के अन्तर्गत भारतवर्ष में जीवन अत्यन्त अल्प है, किन्तु यहाँ का वासी पूर्ण कृष्णभक्ति तक पहुँच सकता है और भगवान् के चरणकमलों में अर्पित होकर इस लघु जीवन में भी परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है । इस प्रकार उसे वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है जहाँ न तो चिन्ता है, न भौतिक शरीर युक्त पुनर्जन्म ।

तात्पर्य : भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु से इस कथन की पुष्टि होती है—

भारत-भूमि ते हैल मनुष्य जन्म यार ।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करने वाले को श्रीकृष्ण द्वारा *भगवद्गीता* में दिये गये सीधे उपदेशों का अध्ययन करने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होता है और इस तरह वह इस मानव जीवन में जो कुछ करना है, उसके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय ले सकता है। मनुष्य को चाहिए कि वह निश्चित रूप से समस्त विकल्पों को त्याग कर श्रीकृष्ण को आत्मसमर्पण कर दे। श्रीकृष्ण तुरन्त ही उसके सारे विगत पापों के फल को दूर कर देंगे ( *अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः* )। अतः साक्षात् श्रीकृष्ण के वचनों को मानकर उनकी भक्ति करनी चाहिए। *मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—सदैव मेरा ही स्मरण करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। यह तो एक बालक के लिए भी अत्यन्त सुगम है। तो फिर इस पथ को क्यों न ग्रहण किया जाये? मनुष्य को चाहिए कि श्रीकृष्ण के उपदेशों का यथातथ्य पालन करे और इस प्रकार भगवद्धाम को प्राप्त करने की क्षमता ले ( *त्यक्त्या देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन* )। मनुष्य को चाहिए कि श्रीकृष्ण के पास जाकर सीधे उनकी सेवा में लग जाये। भारतवर्ष के वासियों के लिए यह सर्वोत्तम अवसर है। जो ईश्वर के धाम लौटने के योग्य होता है उसे अच्छे या बुरे कर्म-फल नहीं भोगने पड़ते।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा

न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।

न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः

सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जहां; वैकुण्ठ-कथा-सुधा-आपगा:—समस्त चिन्ताओं को दूर करने वाले श्रीवैकुण्ठ अर्थात् श्रीभगवान् की अमृतमयी धारा के समान कथा; न—न तो; साधवः—भक्तजन; भागवताः—श्रीभगवान् की सेवा में निरन्तर तत्पर; तत्-आश्रयाः—श्रीभगवान् की शरण में गये; न—नहीं; यत्र—जहाँ; यज्ञ-ईश-मखाः—यज्ञों के स्वामी के प्रति की गई भक्ति; महा-उत्सवाः—जो वास्तविक उत्सव हैं; सुरेश-लोकः—स्वर्गवासियों का स्थान; अपि—यद्यपि; न—नहीं; वै—निश्चय ही; सः—उस; सेव्यताम्—सेवनीय।

जहाँ श्रीभगवान् की कथा रूपी विशुद्ध गंगा प्रवाहित नहीं होती और जहाँ पवित्रता की ऐसी नदी के तट पर सेवा में तल्लीन भक्तजन नहीं रहते, अथवा श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए जहाँ संकीर्तन-यज्ञ के उत्सव नहीं मनाये जाते, ऐसे स्थान में बुद्धिमान पुरुष के लिए रुचि नहीं होती। क्योंकि ( इस युग में विशेषकर संकीर्तन-यज्ञ की संस्तुति की गई है )।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म भारतवर्ष में, विशेष रूप से बंगाल के नदिया जिले में, हुआ

जहां नवद्वीप स्थित है। अतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ लोक यह पृथ्वी है और इसी पर भारतवर्ष स्थित है; भारतवर्ष में ही बंगाल है जो इससे उत्तम है, बंगाल में नदिया जिला उससे भी उत्तम है और नदिया में नवद्वीप सर्वोत्तम है, क्योंकि यहीं श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हरे कृष्ण महामंत्र कीर्तन का शुभारम्भ करने के लिए हुआ। शास्त्रों का मत है—

*कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदं ।*

*यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥*

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ सदैव ही उनके पार्षद, यथा श्रीनित्यानंद, श्रीगदाधर तथा श्रीअद्वैत एवं श्रीवास जैसे अनेक भक्त रहते हैं। वे सदैव भगवन्नाम का कीर्तन और श्रीकृष्ण का गुण-गान करते हैं। इसीलिए भारतवर्ष विश्वभर में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थान मायापुर में अपना केन्द्र स्थापित कर रखा है, जिससे लोग वहाँ जायें और सतत चल रहे संकीर्तन-यज्ञ के उत्सव में भाग ले सकें जैसाकि महासंस्तुत है—यज्ञेष मखा महोत्सवाः तथा उन लाखों भूखे मनुष्यों को प्रसाद का वितरण कर सकें जो आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए लालायित हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। इसकी पुष्टि *चैतन्यभागवत* में इस प्रकार की गई है—

“भले ही स्वर्ग क्यों न हो, यदि वहाँ श्रीभगवान् के यश प्रसार करने का प्रचार नहीं हो पाता, यदि भगवान् के शुद्ध भक्त वैष्णवों का वहाँ चिह्न नहीं मिलता और कृष्णभावनामृत को प्रचारित करने वाले उत्सव वहाँ नहीं मनाये जाते, तो मनुष्य को ऐसे स्थान की कामना नहीं करनी चाहिए। इससे अच्छा तो यही है कि सदा-सर्वदा माता के गर्भ में वास रहे, जहाँ कम से कम भगवान् के चरणकमलों का स्मरण तो हो सकता है। मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसे अधम स्थान में जन्म न लेना पड़े।” इसी प्रकार *चैतन्यचरितामृत* में कृष्णदास कविराज का कथन है कि चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ही संकीर्तन आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, अतः जो भी भगवान् को प्रसन्न करने के लिए संकीर्तन करता है, वह अत्यन्त भाग्यशाली है। ऐसा मनुष्य परम बुद्धिमान है, जबकि अन्य लोग भौतिक जीवन की अविद्या से ग्रस्त हैं। वैदिक साहित्य में जितने भी यज्ञों का उल्लेख है उनमें संकीर्तन यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। एक सौ अश्वमेघ यज्ञों की भी तुलना संकीर्तन यज्ञ से नहीं की जा सकती, *चैतन्यचरितामृत* के लेखक के अनुसार यदि

कोई संकीर्तन यज्ञ की तुलना अन्य यज्ञों से करता है, तो वह पाखण्डी है और यमराज द्वारा दण्डित होगा। अनेक मायावादी संकीर्तन यज्ञ को अश्वमेध-यज्ञ तथा अन्य शुभ-आयोजनों के समान पवित्र कार्य मानते हैं, किन्तु ऐसा मानना नाम-अपराध है। मायावादी भले ही ऐसा सोचें, किन्तु नारायण के पवित्र नाम का संकीर्तन तथा अन्य नामों का संकीर्तन कभी भी एकसमान नहीं है।

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो  
 ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।  
 न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते  
 भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

प्राप्ता:—जिन्होंने प्राप्त कर लिया है; नृ-जातिम्—मनुष्य समाज में जन्म; तु—निश्चय ही; इह—इस भारत देश में; ये—वे जो; च—भी; जन्तवः—जीव; ज्ञान—ज्ञान से; क्रिया—कर्म से; द्रव्य—पदार्थों के; कलाप—समूह से; सम्भृताम्—पूर्ण; न—नहीं; वै—निश्चित रूप से; यतेरन्—प्रयत्न; अपुनः-भवाय—अमर-पद के लिए; ते—ऐसे व्यक्ति; भूयः—पुनः; वनौकाः—पक्षियों; इव—जैसा; यान्ति—जाते हैं; बन्धनम्—बन्धन को।

भक्ति के लिए भारतवर्ष में उपयुक्त क्षेत्र तथा परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, जिस भक्ति से ज्ञान तथा कर्म के फलों से मुक्त हुआ जा सकता है। यदि कोई भारतवर्ष में मनुष्य देह धारण करके संकीर्तन-यज्ञ नहीं करता तो वह उन जंगली पशुओं तथा पक्षियों की भाँति है जो मुक्त किये जाने पर भी असावधान रहते हैं और शिकारी द्वारा पुनः बन्दी बना लिए जाते हैं।

तात्पर्य : भारतवर्ष ऐसा देश है, जिसमें श्रवणं कीर्तनं विष्णोः वाले संकीर्तन यज्ञ को अथवा स्मरणं अर्चनं दास्यं सख्यं तथा आत्मनिवेदनं जैसी अन्य भक्ति-विधियों को सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। भारतवर्ष में ही अनेक पवित्र स्थानों को देखने का अवसर प्राप्त है जिनमें श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म-स्थान नवद्वीप तथा भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म-स्थान वृन्दावन मुख्य हैं, जहाँ के अनेक शुद्ध भक्तों की एकमात्र अभिलाषा भक्ति है ( *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्* )। इस प्रकार से प्राणी भौतिक बन्धनों से छूट जाता है। अन्य मार्ग, यथा ज्ञान मार्ग तथा कर्म-मार्ग उतने लाभप्रद नहीं हैं। पुण्यकार्यों से स्वर्ग प्राप्त हो सकता है और ज्ञान-मीमांसा से ब्रह्मभूत हुआ जा सकता है, किन्तु यह वास्तविक लाभ नहीं, क्योंकि मनुष्य को पुनः नीचे आना पड़ता है। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् के धाम वापस पहुँचने के लिए प्रयास करे ( *यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्* ) अन्यथा मनुष्य जीवन तथा जंगली पशु-पक्षियों के जीवन में कोई अन्तर नहीं है। पशु तथा पक्षी भी स्वतंत्र होते

हैं, किन्तु निम्न योनि में जन्मने के कारण वे स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर पाते। अतः भारतवर्ष में जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य को जो भी सुविधाएँ प्राप्त हैं, उनका उपयोग करते हुए उसे प्रबुद्ध भक्त बनकर भगवान् के धाम वापस जाना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही विषय है। भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य सभी देशों के वासियों को भौतिक सुख-सुविधाएँ तो प्राप्त हैं, किन्तु उन्हें कृष्णभक्ति प्राप्त करने की वैसी ही सुविधा प्राप्त नहीं है। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि जिस किसी ने भारत भूमि में मनुष्य रूप में जन्म लिया है उसे अपने आपको श्रीकृष्ण का अंश मानना चाहिए और कृष्णभावनामृत प्राप्त कर लेने के पश्चात् समग्र विश्व में इस ज्ञान का वितरण करना चाहिए।

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-

निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।

एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा

गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यैः—जिनके द्वारा ( भारतवासी ); श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; बर्हिषि—वैदिक यज्ञों के करने में; भागशः—विभाजन द्वारा; हविः—आहुति; निरुप्तम्—डाली गई; इष्टम्—इच्छित श्रीविग्रह को; विधि—विधिपूर्वक; मन्त्र—मंत्रोच्चार द्वारा; वस्तुतः—समुचित वस्तुओं सहित; एकः—एक श्रीभगवान्; पृथक्—भिन्न; नामभिः—नामों से; आहुतः—पुकारा हुआ; मुदा—अत्यधिक सुखपूर्वक; गृह्णाति—स्वीकार करता है; पूर्णः—परमेश्वर, जो स्वयं में पूर्ण है; स्वयम्—अपने आप में साक्षात्; आशिषाम्—समस्त आशीर्वादों का; प्रभुः—दाता।

भारतवर्ष में परमेश्वर द्वारा नियुक्त विभिन्न अधिकारी स्वरूप देवताओं—यथा इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य—के अनेक उपासक हैं, जिन सभी की पृथक्-पृथक् विधियों से पूजा की जाती है। उपासक इन देवताओं को पूर्ण ब्रह्म का अंश मानते हुए अपनी आहुतियाँ अर्पण करते हैं, फलतः श्रीभगवान् इन भेंटों को स्वीकार करते हैं और क्रमशः इन उपासकों की कामनाओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करके उन्हें शुद्ध भक्ति पद तक ऊपर उठा देते हैं। चूँकि श्रीभगवान् पूर्ण हैं, अतः वे उनको मनवांछित वर देते हैं, चाहे उपासक उनके दिव्य शरीर के किसी एक अंश की पूजा क्यों न करते हों।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.१३) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

“हे पार्थ! मोहमुक्त महात्माजन तो मेरी दिव्य प्रकृति के आश्रित होकर और मुझे अविनाशी आदिपुरुष जानकर अनन्य चित्त से मेरी भक्ति के ही परायण रहते हैं।” महात्मा केवल भगवान् की उपासना करते हैं। किन्तु अन्य भी, जिन्हें कभी-कभी महात्मा कहा जाता है, भगवान् की उपासना एकत्वेन पृथक्त्वेन रूप में करते हैं। तात्पर्य यह है कि वे देवताओं को श्रीकृष्ण के विभिन्न अंश मानकर नाना प्रकार के वरों के लिए उपासना करते हैं। यद्यपि देवताओं के भक्तों को इस तरह कृष्णद्वारा प्रदत्त वांछित फल मिलते हैं, किन्तु भगवद्गीता में इन्हें हत-ज्ञान अर्थात् अत्यधिक ज्ञानी नहीं कहा गया। श्रीकृष्ण नहीं चाहते कि उनकी देह के विभिन्न अंशों द्वारा उनकी अप्रत्यक्ष उपासना की जाये, वे तो प्रत्यक्ष भक्ति-उपासना के इच्छुक हैं। अतः ऐसा भक्त जो श्रीकृष्ण की उपासना श्रीमद्भागवत में बताई गई कठिन भक्ति साधना से ( तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ) करते हैं उन्हें वे शीघ्र ही दिव्य-पद प्रदान करते हैं। फिर भी जो भक्त भगवान् के अंश रूप देवताओं की उपासना करते हैं, उन्हें मनवांछित फल प्राप्त होते हैं, क्योंकि सभी वरों के आदि-स्वामी भगवान् ही हैं। यदि कोई विशेष वर माँगता है, तो श्रीभगवान् के लिए ऐसा वर देना कोई कठिन काम नहीं होता।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां

नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-

मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सचमुच; दिशति—देता है; अर्थितम्—अभीष्ट पदार्थ; अर्थितः—माँगने पर; नृणाम्—मनुष्यों के द्वारा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अर्थ-दः—वर देनेवाला; यत्—जो; पुनः—फिर; अर्थिता—वर की कामनाएँ; यतः—जिससे; स्वयम्—साक्षात्; विधत्ते—प्रदान करता है; भजताम्—भगवान् की सेवा में निरत लोगों को; अनिच्छताम्—निष्काम भाव से; इच्छा-पिधानम्—समस्त वांछित वस्तुएँ; निज-पाद-पल्लवम्—अपने चरणकमलों पर।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उस भक्त की भौतिक कामनाओं की पूर्ति करते हैं, जो सकाम भाव से उनके पास जाता है, किन्तु वे भक्त को ऐसा वर नहीं देते जिससे वह अधिकाधिक वर माँगता रहे। फिर भी, भगवान् प्रसन्नतापूर्वक ऐसे भक्त को अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, भले ही वह इसकी आकांक्षा न करे और शरणागत होने पर उसकी समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। यह श्रीभगवान् की विशेष अनुकम्पा है।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में वर्णित भक्तजन श्रीभगवान् के पास सकाम भाव से पहुँचते हैं। इस

श्लोक में यह बताया गया है कि वे किस प्रकार उन कामनाओं से अलग रखे जा सकते हैं।

श्रीमद्भागवत का (२.३.१०) उपदेश है—

*अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।*

*तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥*

“चाहे भौतिक कामनाओं से मुक्त हो या उनसे पूर्ण अथवा परमात्मा से तदाकार होना (मोक्षकामी) चाहता हो, मनुष्य को चाहिए कि भक्ति करे।” इससे न केवल भक्त की इच्छाएँ पूरी होंगी, वरन् एक दिन ऐसा आएगा जब वह भगवान् के चरणकमलों की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहेगा। जो किसी उद्देश्य से भगवान् की सेवा करता है, वह *सकाम भक्त* कहलाता है और जो बिना किसी उद्देश्य के सेवा करता है, वह *अकाम भक्त* कहलाता है। श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि वे *सकाम भक्त* को *अकाम भक्त* बना देते हैं। शुद्ध भक्त अथवा अकाम भक्त जिस में किसी प्रकार की कामना नहीं होती। वह तो भगवान् के चरणकमलों की सेवा करके ही सन्तुष्ट रहता है। *भगवद्गीता* (६.२२) में इसकी पुष्टि की गई है—*यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः*—श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा में लगे रहने पर किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं रह जाती। यह भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है। भगवान् सकाम-भक्त पर भी इतने दयालु रहते हैं और उसकी इच्छाओं को इस प्रकार पूर्ण करते हैं कि वह एक दिन अकाम भक्त बन जाता है। उदाहरणार्थ, ध्रुव महाराज अपने पिता से भी बढ़कर उत्तम राज्य प्राप्त करने के लिए भक्त बने। किन्तु अन्त में *अकाम भक्त* होकर उन्होंने भगवान् से कहा—*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—“हे स्वामी, मैं परम सन्तुष्ट हूँ, मैं केवल आपके चरणकमलों की सेवा करना चाहता हूँ। मुझे किसी सांसारिक लाभ की इच्छा नहीं है।” कभी-कभी छोटा बालक गन्दी वस्तु को खाने लगता है, तो उसके माता-पिता उसके मुँह से उस वस्तु को निकाल कर उसे *संदेश* या कोई दूसरी मिठाई खाने को देते हैं। वह भक्त जो भौतिक वर की इच्छा करता है ऐसे ही बालक के तुल्य है। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे उसकी समस्त भौतिक कामनाओं को हर कर उसे सर्वोच्च वर प्रदान करते हैं। अतः भौतिक कामनाओं के लिए भी श्रीभगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य की पूजा नहीं करनी चाहिए। मनुष्य को भगवान् की ही भक्ति करनी चाहिए जिससे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों और अन्त में वह श्रीभगवान् के धाम वापस पहुँच सके। इसकी व्याख्या



चैतन्यचरितामृत (मध्य २२.३७-३९, ४१) में इस प्रकार की गई है।

अन्यकामी—हो सकता है कि भक्त भगवान् के चरणकमलों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की कामना करे; यदि करे कृष्णोर भजन—किन्तु यदि वह श्रीकृष्ण की सेवा में अपने को लगाता है, ना मागितेह कृष्ण तारे देन स्व-चरण—उसके न चाहने पर भी श्रीकृष्ण उसे अपने चरणकमलों में शरण देते हैं। कृष्ण कहे—श्रीकृष्ण कहते हैं; आमा भजे—वह मेरी सेवा में रत है। मागे विषय-सुख—तो भी इन्द्रिय सुख चाहता है; अमृत छाड़ि' विष मागे—ऐसा भक्त उस पुरुष के तुल्य है जो अमृत छोड़कर विष की याचना करता है; एइ बड़ मूर्ख—यही उसकी नादानी है, आमी—विज्ञ 'किन्तु मैं अनुभवी हूँ'; इए मूर्खे 'विषय' केने दिब—मैं ऐसे मूर्ख को भला क्योंकर भौतिक सुख जैसी गन्दी वस्तु देने लगा। स्व-चरणामृत मेरे लिए अच्छा होगा यदि मैं उसे अपने चरणकमलों में शरण दूँ 'विषय' भुलाइब—मैं ऐसा करूँगा कि वह समस्त भौतिक कामनाओं को भूल जाये। काम लागि, कृष्ण भजे—यदि कोई इन्द्रियतृप्ति के लिए भगवान् की सेवा में रत होता है। पाय कृष्ण-रसे—उसे अन्त में भगवान् के चरणकमलों की सेवा का स्वाद मिल जाता है; काम छाड़ि 'दास' हैते हय अभिलाषे—वह समस्त कामनाएँ छोड़कर भगवान् का चिरन्तन सेवक बनना चाहता है।

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं

स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।

तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्

वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; अत्र—इस स्वर्गलोक में; नः—हमारा; स्वर्ग-सुख-अवशेषितम्—स्वर्गिक सुख भोगने के बाद जो कुछ भी शेष रहता है; सु-इष्टस्य—पूर्ण यज्ञ का; सु-उक्तस्य—वैदिक साहित्य के पठन का; कृतस्य—सुकर्म का; शोभनम्—शेष कार्य; तेन—ऐसे कार्य से; अजनाभे—भारतवर्ष में; स्मृति-मत् जन्म—भगवान् के चरणों को स्मरण करने वाला जन्म; नः—हमारा; स्यात्—हो; वर्षे—देश में; हरिः—श्रीभगवान्; यत्—जिसमें; भजताम्—भक्तों का; शम् तनोति—कल्याण का प्रसार करता है।

यज्ञ, पुण्य कर्म, अनुष्ठान तथा वेदाध्ययन करते रहने के कारणस्वरूप हम स्वर्ग-लोक में वास कर रहे हैं, किन्तु एक दिन ऐसा आएगा जब हमारा भी अन्त हो जाएगा। हमारी प्रार्थना है कि उस समय तक यदि हमारे एक भी पुण्य शेष रहें तो हम मनुष्य रूप में भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने के लिए भारतवर्ष में जन्म लें। श्रीभगवान् इतने दयालु हैं कि वे

स्वयं भारतवर्ष में आते हैं और यहाँ के वासियों को सौभाग्य प्रदान करते हैं।

तात्पर्य : निस्सन्देह, पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही स्वर्गलोक में मनुष्य जन्म लेता है, किन्तु वहाँ से उसे पुनः मर्त्यलोक में आना पड़ता है, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है ( *क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति* )। यहाँ तक कि देवताओं को भी पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर लौट कर सामान्य व्यक्तियों की तरह कार्य करना होता है। तो भी, देवतागण भारतवर्ष की भूमि में आने की कामना करते रहते हैं। यदि उनके पुण्य कर्मों के फल का थोड़ा सा भाग भी बचा हो। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में जन्म लेने के लिए देवताओं से भी अधिक पुण्य करने पड़ते हैं। भारतवर्ष में स्वाभाविक रूप से मनुष्य कृष्णभावनाभावित रहता है और यदि श्रीकृष्ण की कृपा से वह आगे भी कृष्णभक्ति का अनुशीलन करता रहता है, तो वह कृष्णभक्ति में पारंगत बन कर और भगवान् के धाम को सरलता से वापस जाकर अपने सौभाग्य का विस्तार करता है। वैदिक साहित्य में अन्य कई स्थानों में उल्लेख मिलता है कि देवता भी भारतवर्ष की भूमि में आने के इच्छुक रहते हैं। केवल मूर्ख व्यक्ति ही अपने पुण्यकर्मों के बदले में स्वर्गलोक की कामना करेगा, अन्यथा देवता भी भारतवर्ष में आकर देह धारण करना चाहते हैं, जिससे इसका उपयोग कृष्णभावनामृत के अनुशीलन में किया जा सके। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु बारम्बार कहते हैं—

*भारत भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।*

*जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥*

भारत भूमि में जन्म लेने वाले मनुष्य को कृष्णभक्ति अनुशीलन करने का विशेष अधिकार प्राप्त है। अतः जो पहले ही भारतवर्ष में जन्म ले चुके हैं, उनका कर्तव्य है कि वे शास्त्रों तथा गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करें तथा कृष्णभावनामृत से पूर्णतया परिचित होने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु की अनुकम्पा का लाभ उठाएँ। इस तरह कृष्णभावनामृत का पूरा-पूरा लाभ उठाकर श्रीभगवान् के धाम को वापस जाया जा सकता है ( *यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्* )। इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्व भर में अनेक केन्द्रों की स्थापना करके मानव समाज को यह सुविधा प्रदान कर रहा है, जिससे जन-साधारण कृष्णभावनामृत आन्दोलन के शुद्ध भक्तों का संग कर सकें, कृष्णभावनामृत के विज्ञान को समझें, एवं अन्त में श्रीधाम को वापस जाँए।

श्रीशुक उवाच

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो  
निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः  
सिंहलो लङ्केति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; जम्बूद्वीपस्य—जम्बूद्वीप का; च—भी; राजन्—हे राजा; उपद्वीपान् अष्टौ—आठ उपद्वीप; ह—निश्चय ही; एके—कुछेक; उपदिशन्ति—विद्वान बताते हैं; सगर-आत्म-जैः—महाराज सगर के पुत्रों द्वारा; अश्व-अन्वेषणो—खोये हुए घोड़े को ढूँढते समय; इमाम्—इस; महीम्—भूभाग को; परितः—चारों ओर; निखनद्भिः—खोदते हुए; उपकल्पितान्—सृष्टि की; तत्—उस; यथा—निम्नलिखित प्रकार से; स्वर्ण-प्रस्थः—स्वर्ण-प्रस्थ; चन्द्र-शुक्लः—चन्द्रशुक्ल; आवर्तनः—आवर्तन; रमणकः—रमणक; मन्दर-हरिणः—मन्दरहरिण; पाञ्चजन्यः—पांचजन्य; सिंहलः—सिंहल; लङ्का—लंका; इति—इस प्रकार।

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्, कुछ ज्ञानी पुरुषों के मत के अनुसार जम्बूद्वीप के चारों ओर आठ छोटे-छोटे द्वीप हैं। जब महाराज सगर के पुत्र अपने खोये हुए घोड़े की खोज सारे संसार में कर रहे थे, तो उन्होंने पृथ्वी को खोद डाला। इस प्रकार से निकटस्थ आठ द्वीप अस्तित्व में आए। इन द्वीपों के नाम हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल तथा लंका।

तात्पर्य : कूर्म पुराण में देवताओं की इच्छाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन मिलता है—

अनधिकारिणो देवाः स्वर्गस्था भारतोद्भवम्।

वाञ्छन्त्य् आत्मविमोक्षार्थमुद्रेकार्थेऽधिकारिणः ॥

यद्यपि देवता स्वर्गलोक में उच्च पदों पर आसीन हैं फिर भी वे मर्त्यलोक में भारतवर्ष की भूमि पर उतरने के लिए उत्सुक रहते हैं। इससे संकेत मिलता है कि देवता भी भारतवर्ष में रहने के लिए योग्य नहीं हैं। अतः यदि भारतवर्ष में जन्म लेने वाला प्राणी कुत्ते-बिल्ली की तरह रहे और इस भूमि में जन्म प्राप्त करने का लाभ न उठाए तो वह सचमुच ही अभाग है।

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; तव—तुमसे; भारत-उत्तम—भरत के वंशजों में श्रेष्ठ; जम्बूद्वीप-वर्ष-विभागः—इस जम्बूद्वीप का प्रखण्ड; यथा-उपदेशम्—अधिकारियों से मुझे जितना ज्ञान प्राप्त है; उपवर्णितः—मैंने व्याख्या की; इति—इस प्रकार।

भरत महाराज के वंशजों में श्रेष्ठ, हे राजा परीक्षित, मैंने जितना ज्ञान प्राप्त किया है, उसी के

अनुसार मैंने भारतवर्ष तथा उसके निकटवर्ती द्वीपों का वर्णन किया है। ये ही जम्बूद्वीप के उपद्वीप हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “जम्बूद्वीप का वर्णन” नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।